भूषण बोला, ''आपके लिए 'प्रेजेण्ट' हैं, खोलिए ना।''

''अह, इस उम्र में क्या हो रहा 'प्रेजेण्ट-व्रीजेण्ट! ' तुम खोलो, तुम्हीं इस्तेमाल करो।'' यशोधर बाबू शर्मीली हँसी हँसे।

भूषण सबसे बड़ा पैकेट उठाकर और उसे खोलते हुए बोला, ''इसे तो ले लीजिए। यह मैं आपके लिए लाया हूँ। ऊनी 'ड्रेसिंग गाउन' है। आप सवेरे जब दूध लेने जाते हैं बब्बा, फटा 'प्लोवर' पहन के चले जाते हैं जो बहुत ही बुरा लगता है। आप इसे पहन के जाया कीजिए।''

बेटी पिता का पाजामा-कुर्ता उठा लाई कि इसे पहनकर गाउन पहनें।

थोड़ा-सा ना-नुच करने के बाद यशोधर जी ने इस आग्रह की रक्षा की। 'गाउन' का 'सैश' कसते हुए उन्होंने कहा, ''अच्छा तो यह ठहरा 'ड्रेसिंग गाउन'।'' उन्होंने कहा और उनकी आँखों की कोर में जरा-सी नमी चमक गई।

यह कहना मुश्किल है कि इस घड़ी उन्हें यह बात चुभ गई कि उनका जो बेटा यह कह रहा है कि आप सवेरे यह 'ड्रेसिंग गाउन' पहनकर दूध लाने जाया करें, वह यह नहीं कर रहा है कि दूध मैं ला दिया करूंगा या कि इस गाउन को पहनकर उनके अंगों में वह किशन दा उतर आया है जिसकी मौत 'जो हुआ होगा' से हुई।

मनोहर श्याम जोशी

जन्म : 9 अगस्त, 1933

प्रमुख कृतियाँ : कुरु कुरु स्वाहा, कसप, हरिया हर्क्यूलिस की हैरानी, क्याप (उपन्यास) लखनऊ मेटा लखनऊ, कक्काजी कटिम दिवंगत

रमज़ान में मौत

–मंजूर एहतेशाम

असद मियाँ की आँखें बन्द थीं। एक पल के लिए मैंने सोचा , वापिस चला जाऊँ। दूसरे ही पल असद मियाँ आँखें खोले देख रहे थे। उन आँखों में कोहरा भरी सुबह-सी रोशनी थी।

-खुदा के लिए अयाज़...सीना दर्द से टूटा जा रहा है।

सुहेला भाभी आइने के सामने खड़ी हुई डैबिंग करके चेहरे के धब्बे मिटा रही थीं। कमरे में जलते हुए बल्ब की रोशनी धीरे-धीरे बाहर फैलते अँधेरे के साथ उभरने लगी थी। सूरज डूबने में कुछ और देर थी।

-जमील! अरे, जमील! सुहेला भाभी ने आवाज़ दी।

असद मियाँ के पलंग की चादर सफ़ेद थी। पलंग के नीचे दो फटी हुई चप्पलों में उलझी हुई एक सलाबची थी, जिसे शायद वह पिछले कई घंटों से लगातार इस्तेमाल करते रहे थे। उनके पैर गन्दे और एड़ियों की खाल चटख़ी हुई थी। बिस्तर पर चादर का वह हिस्सा जहाँ उनके पैर थे, दाग़दार हो चुका था।

-ज़फर भाई आ रहे हैं, मैंने असद मियाँ से आँखें बचाते हुए कहना चाहा, लेकिन फिर मैंने देखा आँखें तो वो ख़ुद ही बन्द कर चुके थे। सुहेला भाभी ने मज़ाक उड़ाती हुई-सी नज़रों से मेरी तरफ़ देखा और फिर आवाज़ देने लगीं-जमील... अरे, कहाँ ग़ारत हो गया?

-अरे, आ रहा हूँ। कहीं बाहर से आवाज़ आई।

दूर आसमान में चमक-सी फैली। एक सकते के बाद धमाका हुआ।

असद मियाँ की आंखों के पपोटे हलके से हिले, लेकिन आँखें बन्द ही रहीं।

...दो...तीन...चार तोपें चल रही थीं। इफ़्तार का वक़्त हो गया था।

-लेकिन यार तोपें ही क्यों? ये तो बिल्कुल ऐसा लगता है, जैसे किसी को सलामी दी जा रही हो। सायरन भी तो बजाया जा सकता है? एक बार मेरे दोस्त ने मुझसे पूछा था और मैं हँसकर रह गया था।

-अगर ख़ुद साफ नहीं रह सकते तो दूसरों को तो चैन से करने दें! खुद के पलंग पर नहीं लेट सके, सारी चादर का सत्यानाश कर दिया! सुहेला भाभी खुद को एक ख़ूबसूरत सिंगार मेज़ में लगे आइने में देखते हुए बुदबुदा रही थीं- और अगर चाँद दिख गया तो कल ईद है। कोई धुली चादर भी न होगी।

मैंने देखा, आइना बिल्कुल बेदाग़ था, लेकिन लकड़ी के बने मेज़ के फ़्रेम की पॉलिश जगह-जगह से उड़ गई थी और कई जगह पड़े हुए गड्ढों से लकड़ी का अपना रंग झाँकने लगा था। आइने के नीचे बेगिनती शीशियाँ रखी हुई थीं-कॉस्मेटिक्स, परफ्यूम्स और स्प्रेज़ की सुन्दर शीशियाँ जिनमें से, मैंने अन्दाज़ा लगाया, ज्यादातर ख़ाली होंगी।

जमील तेज़ी से कमरे में दाख़िल हुआ। हाथ उठाकर उसने सलाम किया। फिर अजीब तरह से मुस्कुराकर अपने बाप असद मियाँ की तरफ़ देखने लगा।

-क्या कह रही थीं, अम्मी?-फिर जैसे मुझसे छुपाते हुए असद मियाँ की तरफ़ इशारा करके उसने आँखों-ही-आँखों में कोई सवाल अपनी माँ से पूछा।

सुहेला भाभी ने होंठ सिकोड़कर गर्दन हिला दी।

-बुलाने के लिए तुम्हें घंटों आवाज़ें देनी पड़ती हैं। उनके लहज़े में तेज़ी थी।

-मुझे क्या मालूम, आप आ गईं? बग़ैर कहे तो चली गई थीं। जमील ने दूँबदूँ जवाब दिया।

-चाँद दिखा?

-ऊँहुँ।

-देखो, तुम कहीं जाना मत। अभी थोड़ी देर बाद तुम्हें मेरे साथ चलना है।

-अम्मी! जमील ने शिकायती स्वर में कहा-शन्नो और दूसरे लड़के मेरा इन्तज़ार

कर रहे हैं। मुझे उनके साथ जाना है।

-जाना-वाना कहीं नहीं है, आप मेरा इन्तज़ार कीजिए। कहते हुए सुहेला भाभी भीतरी कमरे में चली गई।

केवल असद मियाँ के साँस लेने की आवाज़! ज़फ़र मियाँ अभी तक नहीं आए थे। क्या वह आएँगे?

-यार! तुम चलो, मैंने इफ्तार पर कुछ दोस्तों को बुलाया है। असद मियाँ के तीसरे बुलावे पर उन्होंने मुझसे कहा था। मैं शहनाज़ आपा के पास बैठा ईद के शीर-खुर्मा की लिस्ट बना रहा था। तुम चलो, मैं आता हूँ।

असद मियाँ के सिरहाने कैलेंडर के पन्ने कई महीनों से नहीं बदले गए थे। कमरे के एक हिस्से में काली अपहोलस्ट्री के गहरे सोफे बिछे हुए थे। कोने में लम्बे-से बुकशेल्फ़ पर तरतीब और बेतरतीबी के साथ बहुत-सी किताबें थीं-इन्साइक्लोपिडियाज़? बिज़नेस डायरेक्ट्रीज, दाईं तरफ दीवार पर एक बिदकते घोड़े की पेंटिंग टँगी हुई थी। सेंटर टेबल के नीचे का क़ालीन फट चुका था। वैसे भी क़ालीन का डिज़ाइन ज़्यादा इस्तेमाल की वजह से डल हो गया था। केवल कुछ उड़े-उड़े से रंग थे जिनमें बुनियादी यक्सानियत शायद धूल की शिदत्त की वजह से थी।

-जफ़र नहीं आए अब तक? असद मियाँ की झिलमिलाती-सी आँखे मेरी तरफ़ देख रही थीं।

-कुछ दोस्तों को खाने बुलाया है, आते ही होंगे। मैंने धीरे से कहा-कब से तबीयत ख़राब है?

-ऐं...? तबीयत...? चार-पाँच दिन से खराब है। सीने में सख़्त दर्द है, दिल बिल्कुल बैठा जा रहा है, उनकी साँस ऊपर-नीचे हो रही थी।

-तमशाबाजी है! निरी ऐक्टिंग! और सारे मर्ज़ों की एक ही दवा है-पैथिडीन! असद मियाँ के दूसरे बुलावे पर ज़फ़र मियाँ ने झुँझलाकर कहा था।-कुछ और काम भी करने हैं! चाँद दिख गया तो कल ईद है। मज़ाक़ बना लिया है उन्होंने तो-फिर घड़ी खोलकर यूँ ही झटका देने के बाद वह उसे कान से लगाकर सुनने लगे थे। उस समय मुझे गाँव से आए कोई एक घंटा हुआ था।

-किसी डॉक्टर को दिखाया? मैंने असद मियाँ की कलाई थामते हुए पूछा।

सब कुछ फिर ख़ामोशी में डूब गया। असद मियाँ छत की तरफ़ मुस्कुराती-सी

नज़रों से देख रहे थे। उनकी निगाहें जाने या अनजाने छत के उसी हिस्से पर टिकी थीं जहां पंखा लगाने का हुक था। बिजली की फिटिंग वहां तक बकायदगी से जाकर एकदम दो नंगे वायरों की आँखों से झाँकने लगी थी।

–तुम मेरा एक काम कर दो। उनकी आवाज़ और आँखों पहली बार मेरी ओर मुड़ी।

–जी।

–मेरी तबीयत ठीक नहीं है, और मैंने कल से इन्जेक्शन भी नहीं लिया है। कल दोपहर से। शायद उससे तबीयत कुछ बेहतर हो जाए। उनके स्वर में बला की मिन्नत थी–तीन इन्जेक्शन पैथिडीन के। मदन के यहाँ मिल जाएँगे।

मैंने धीरे से ठंडी साँस ली। असद मियाँ बिना पलकें झपकाए उन्हीं मिन्नत भरी नज़रों से मेरी ओर देख रहे थे। उसी समय हाथ में काले चमड़े का बैग थोमे, प्याज़ी रंग की साड़ी पहने सुहेला भाभी कमरे में दाख़िल हुईं।

–मुझे ज़रा बाहर जाना है। जैसे उन्होंने अपने–आपसे कहा–ये जमील कहाँ चला गया? फिर बिना किसी जवाब की प्रतीक्षा किए वह पर्दा उठाकर बाहर निकल गई।

असद मियाँ उसे तरह मेरी तरफ़ देख रहे थे।

सीढ़ियाँ उतरते–उतरते मैं न चाहते हुए जफ़र मियाँ के घर की ओर मुड़ गया। फ़लक मंज़िल के बाहरी हिस्से में ज़फ़र मियाँ और इसके पीछे उनकी छोटी बहन शाहिदा रहती थी। पिछले टुकड़े में सबसे बड़े भाई असद मियाँ का खानदान था। घूमकर मैं ज़फ़र मियाँ के कमरे में पहुँचा।

शहनाज़ आपा तन्नू को उसका ईद का जूता दिखा रही थीं।

–मामूँ आ गए। देखिए मामूँ, अब्बू हमारा नया जूता लाए। तन्नू बहुत खुश था।

–और बेटा, मामूँ को नहीं बताया कि तुमने शेर कैसे मारा था? और तुम्हारी बन्दूक़ कहाँ है?

ज़फ़र मियाँ बाहर के कमरे से अन्दर आ गए थे। तन्नू नक़ल करके बता रहा था कि झाड़ी में से 'हाऊँ' करता कैसे शेर निकला और कैसे उसने अपनी कॉर्क बाली बन्दूक से उसे ढेर कर दिया। फिर दीवान पर बिछी शेर की खाल की तरफ़ इशारा करके उसने ठेठ शिकारियों वाले लहज़े में कहा– उसी की खाल है। जफ़र मियाँ हँस–हँसकर लोटे जा रहे थे।

–भई खाना तैयार हो गया? रियाज़? का तो रोज़ा था, सूख गए होंगे। उन्होंने शहनाज़ आपा से कहा और दोनों बावर्चीख़ाने की तरफ़ चले गए।

तन्नू अपनी बन्दूक़ लटकाए शायद दादी माँ को शेर का शिकार सुनाने चला गया और मैं अकेला दीवान पर बैठा रह गया। कमरे के दो कोनों में रखे लैम्प्स के शेड्स में से रोशनी छन–छनकर अँधेरे में घुल रही थी और कुल मिलाकर ऐसा लग रहा था कि सूरज निकलने के थोड़े पहले या डूबने के बिल्कुल बाद का समय हो। बीच में महोगनी के सिरहाने की खूबसूरत दोहरी मसहरी थी जिसके लिए ऊपर छत में मच्छरदानी के स्ट्रिंग्स लटक रहे थे। बाजू में दीवार से लगी हुई गहरे काले रंग की वार्डरोब्ज़ थी और उसके बाद लगभग कोने में लैम्प के पास ड्रेसिंग टेबिल। बिल्कुल वैसी ही जैसी असद मियाँ के घर में थी। इसमें पॉलिश की चमक अब भी बाकी थी। दूसरी तरफ़ जूते रखने का स्टैंड या जिसमें बहुत से ज़नाने और मर्दाने जूते रखे हुए थे। पलंग से अटेच्ड, सिरहाने एक छोटा–सा बुक–रैक था जिसमें क़ायदे से किताबें जमी हुई थीं। पूरे कमरे में ब्लड–रैड और ब्लैक के मिले–जुले पैटर्न का क़ालीन बिछा हुआ था।

नहीं। ज़फर मियाँ भूल नहीं सकते थे। फिर क्या जानकर वह असद मियाँ के ज़िक्र को टाल गए थे? पन्द्रह दिन पहले भी जब मैं गाँव से आया था, असद मियाँ की तबीयत ख़राब चल रही थी। बल्कि रमज़ान से पहले तो एक दिन उनकी हालत नाज़ुक हो गई थी। तब मैंने जफ़र मियाँ से कहा था– किसी डॉक्टर को दिखा दें?

–तुम भी यार कमाल करते हो! हर तीसरे दिन किस डॉक्टर को दिखाया जा सकता है? फिर कुछ बीमारी हो तब ना। सड़क पर कोई पहचानवाला मिल जाए तो टांग में चोट लगने से फ्रेक्चर तक ही कहानी उसे सुना देते हैं। दवा के पैसे माँग लेते हैं और जाकर वही पैथिडीन! किसी जान–पहचानवाले के यहाँ अगर मुर्गियाँ पली हैं तो जाकर कहेंगे बच्चों ने बहुत दिन से अंडे नहीं खाए हैं। जो कुछ मिल गया सिन्धी को बेच देंगे और फिर वही पैथिडीन! जीना हराम कर दिया है। इन्शोरेन्सवालों से जो कुछ मकान का किराया मिलता है, वह भी इन्हीं घपलों में उड़ाते हैं। ज़मील चोरी के अलावा अब सट्टे से भी शौक़ करने लगे हैं। इधर भाभी की हरकतें देखो! नसरीन भी उन्हीं के रास्ते पर जा रही है। पता नहीं किन–किन हरामज़ादों के साथ खुली हुई जीपों में घूमती–फिरती है। यही सब दोनों छोटी बेटियाँ भी करेंगी। वह तो बहुत ग़नीमत है कि सारा और समीना की शादियाँ हो गईं। मियाँ, हमने तो उधर फटकना भी छोड़ दिया। अम्मी की ज़िन्दगी तो हराम हो ही गई। तुम ख़ुद सुनते रहते हो, दुनिया की

कौन-सी ज़लालत बची है जो अब फ़लक मंज़िल के नाम से न जोड़ी जा सके! और फिर मेरी अपनी प्रॉब्लम्स हैं। आख़िर कब तक! ज़फ़र मियाँ के चेहरे पर ऐसा तास्सुर था जैसे उनके अनजाने ही मैंने उन्हें किसी भद्दे मज़ाक़ में घसीट लिया हो।

और असद मियाँ की माँ?

-बदनसीब है! माँ ने फूट-फूटकर रोते हुए कहा था-जिन्दगी और मौत दोनों की तरफ से बदनसीब! जैसे जिया है वैसे ही मरेगा! रमजान के मुबारक महीने में तो उस गुनाहगार को मौत तक नीसब नहीं हो सकती। और फिर, जैसे कुछ सोचकर, वह चुप हो गई थीं और बहुत देर तक कुछ भी नहीं बोली थीं।

मैं ज़फ़र मियाँ के कुछ कहे बग़ैर कमरे और फिर फ़लक मंज़िल के बाहर आ गया।

खुल सड़क पर हल्की-सी खुनकी का एहसास हो रहा था। बहुत आगे स्ट्रीट लैम्प जल रहा था और वहाँ तक घुप अँधेरा था। मेन रोड तक पहुँचने के लिए मुझे काफ़ी पैदल चलना था। पीछे से आते हुए स्कूटर की रोशनी और आवाज़ से सड़क पर छाया हुआ अँधेरा जैसे धड़का, फिर ख़ामोशी और अँधेरा एक-दूसरे में घुलकर दूर तक फैलते चले गए।

-जिन्दगी में लेन-देन के कुछ क़ानून शायद लिखे ही नहीं गए। यह भी क्या कि जो कुछ हमें तर्के-विर्से में मिल जाए, हम उसे अपना समझ, ज़रब देने के तरीक़े ढूँढ़ने लगें। ये न लिखे गए क़ानून उन लोगों के लिए हैं, जो सिर्फ़ उस चीज को छूते हैं जिस पर अपना हक़ तसलीम करते हों, जो उन्होंने दाव पर लगाकर वसूल की हो। बाकी सब तो ज़माने की तरफ़ से लादा गया बोझ है।-एक बार काफ़ी ज़्यादा शराब पीने के बाद मेरे सामने असद मियाँ ने लोगों से कहा था। उस रात जुए में वह कोई बीस हज़ार रूपये हारे थे। तब ज़फ़र मियाँ और शहनाज़ आपा की शादी को दो साल हुए थे और मैं अलीगढ़ से छुट्टियों में कुछ दिन के लिए शहनाज आपा के पास ठहरा हुआ था। मुझे पात नहीं क्यों असद मियाँ अच्छे लगते थे। मेरे उनसे ज़्यादा मेल-मिलाप को देखते हुए शहनाज़ आपा ने समझाया था कि मैं उनके पास न जाया करूँ, क्योंकि वहाँ लोग जुआ खेलने और शराब पीने के लिए इकट्ठे होते थे।

फिर धीरे-धीरे सब सामने आ गया था। असर मियाँ ने फ़लक मंज़िल तीन अलग-अलग पार्टियों को रहन रख दी थी-इन्शोरेन्स कम्पनी और कुछ दूसरे मालदार सेठों को। देखते-ही-देखते डिक्रियाँ आने लगी थीं और फ़लक मंज़िल के एक बड़े

हिस्से को फ्लैटों में तब्दील करके किराए पर उठा दिया गया था, उधार वालों की किस्तें चुकाने के लिए। असद मियाँ की माँ ने पहले काफ़ी बर्दाश्त किया क्योंकि असद मियाँ वैसे भी उनके सबसे लाड़ले बेटे थे। -नवाबों से ज़्यादा लाड़ से पाला है मैंने इसे, आँखों में आँसू भरकर वह कहा करती थीं। लेकिन फिर उन्होंनें इस बात को लेकर मुक़दमा दायर कर दिया था कि ज़ायदाद क्योंकि उनके नाम थी, इसलिए उनके जीते-जी उसे रहन रखने का हक़ असद मियाँ को नहीं था। हाइकोर्ट में मुक़दमा चल रहा था और उम्मीद थी कि असद मियाँ के हिस्से को छोड़कर ज़फ़र मियाँ और शाहिदा को उनका हक़ मिल जाएगा।

शाहिदा के ख़्याल से मेरे मुँह में कड़वाहट फैल गई। अलीगढ़ जाने से पहले मैं शाहिदा के बहुत करीब आ गया था और मेरी आने वाली जिन्दगी के ज़्यादातर प्लानों में मैंने शाहिदा को भी शामिल समझ लिया था।

-प्लान! जैसे मैंने खुद से ही कहा। दो साल की मेहनत के बावजूद मैं प्रि-मेडिकल में इतने मार्क्स नहीं ला पाया कि किसी मेडिकल कॉलिज में दाख़िला पा सकूँ। जब तीन साल बाद मैं मुस्तक़िल तौर पर पर शहर लौटा तो शाहिदा, घर में बच्चों को पढ़ाने वाले मास्टर साजिद से शादी कर चुकी थी। साजिद एक ग़रीब घर का लड़का था। और खानदान के उन तेज़ी से बिगड़ते हालात में शायद शाहिदा को वही एक सहारा नज़र आया था। बहरहाल, इस बात को भी अब पाँच साल हो चुके थे। शाहिदा और साजिद का एक बच्चा था और अब असद और ज़फ़र मियाँ की माँ भी अपनी बेटी और दामाद के साथ ही रहती थीं।

सड़क के अगले मोड़ का बल्ब भी किसी ने फोड़ दिया था। अँधेरा उसी तरह छाया हुआ था। सिर्फ पास की कोठी की हल्की-सी रोशनी नज़र आ रही थी और कुत्ते के भौंकने की आवाज! मेरे क़दम धीरे-धीरे उठते रहे।

सबसे ज़्यादा हैरत मुझे असद मियाँ के उस अन्दाज पर होती थी, जिसके साथ उन्होंने पिछले आठ सालों में हर स्टेज पर हालात को स्वीकार किया था। एक ख़ास लापरवाही और बेनियाज़जी उनके अन्दाज़ में थी। माँ से कोई बात मनवाने में नाकाम होने से लेकर जुए में कोई बड़ी रकम हारने और उसके बाद अब अपने एक ज़माने के यार-दोस्तों के, एक रुपए तक के इनकार को उन्होंने उसी नानकेलन्स के साथ क़बूल किया था। एक ज़माने में जो तास्सुर उनके चेहरे पर, खाने में कोई नापसन्द चीज़ देखकर होता था, आज वही किसी भी दोस्त या अजनबी की झिड़की, व्यंग्य या मज़ाक सुनने के बाद। ज़फ़र मियाँ ने हालात से लड़ने के लिए हाथ-पैर मारे थे। अब

उनके दोस्तों की महफ़िलें कम हो गई थीं, तफ़रीहें कम हो गई थीं, यहाँ तक कि कभी-कभी तो ब्यूक में पेट्रोल डलवाना भी मुश्किल हो जाता था। शहनाज़ आपा अच्छे कल की ख़्वाहिश में लॉट्रियों के टिकट ख़रीदती रहती थीं, लेकिन फिर भी उनकी बदहाली एक ख़ास स्टेज तक आकर रुक गई थी। शाहिदा भी एक हरी-भरी बेल की तरह अपने सबसे क़रीब की दीवार का सहारा लेने पर मजबूर हो गई थी। लेकिन असद मियाँ बिना किसी तब्दीली के, वक़्त के साथ-साथ नीचे बैठते गए थे। जैसे उनकी नज़रों में जो कुछ हो रहा था, सिर्फ वही हो सकता था। शहर के विभिन्न हिस्सों में न जाने कितने लोगों से उन्होंने झूठ बोलकर पैसे लिए थे। किसी को नायाब कारतूस लाके देने को, तो कसी को कोई और ज़रूरी चीज़ दिलाने के बहाने, किसी से बीमारी, किसी से भूख का बहाना, लेकिन किसी शर्म का तआस्सुर उनके चेहरे पर कभी नहीं रहा था। यहाँ तक कि पिछले दिनों तो वह पीर-फ़कीरों के मज़ारों पर बैठने लगे थे- नज़र और चढ़ावे मिल जाने की उम्मीद में। जमील चोरी करना सीख गया था, लेकिन उसके चोरी करने पर असद मियाँ ने कभी कोई एतराज़ नहीं किया था। सारा घर उनको भूलकर, उनकी तबीयत की तरफ से आंखे बन्द करके ईद की तैयारियों में लगा हुआ था। ज़फ़र मियाँ के यहाँ एक हफ्ते से घर की लिपाई-पुताई चल रही थी। शाहिदा और ज़फ़र मियाँ के यहाँ बच्चों के कपड़े सिए जा रहे थे। शीर-खुर्मे के लिए सूखे नारियल घिसे जा रहे थे, बादाम-पिस्ते काट-धोकर सुखाए जा रहे थे। गरज़ यह कि हर आदमी अपनी जगह मशगूल था और असद मियाँ जैसे उनके सबकी मजबूरी को समझते थे।

असद मियाँ को इन सब लोगों-बहन, भाई, माँ और दोस्तों के बीच देखकर पता नहीं क्यों मुझे हमेशा ऐसा लगता था, और जैसे सिर्फ एक असद मियाँ ही अपने मुक़ाम पर थे, और सारी दुनिया बदल गई थी।

फ़लक मंज़िल का बाहरी हिस्सा गहरे अँधेरे में डूबा हुआ था। कम्पाउंड-वॉल में जगह-जगह रख़ने पड़ गए थे और कई जगह आसानी के ख़्याल से लोगों ने दाख़िले के लिए दीवार तोड़ डाली थी। दाख़िले के दरवाज़े की जगह दोनों तरफ़ सिर्फ़ सीमेंट के पिलर्स रह गए थे। सामने पोर्च में ज़फ़र मियाँ की ब्यूक खड़ी हुई थी। दाईं तरफ़ शाहिदा और साजिद का हिस्सा था, जिसके बाहर एक साइकिल खड़ी हुई थी। इसके ऊपर और आगे दूर तक फ़लक मंज़िल का हिस्सा और ज़मीन किराए पर उठा दी गई थी। अपने वकील दोस्तों के मशवरे और मदद से ज़फर मियाँ ज़मीन का कुछ हिस्सा मार्टगेज से बचाने में कामयाब हो गए थे। इस हिस्से पर शहनाज़ आपा ने अपना ज़ेवर

गिरवी रखकर एक छोटा-सा फ्लैट बनवा दिया था, जिसमें किराए पर कोई मिलट्री के मेजर रहते थे। दाईं तरफ़ कम्पाउंड में घास-ही-घास थी, जो बीच में बने ख़ूबसूरत हौज़ और फ़व्वारे को जैसे निगल गई थी।

पोर्च से गुज़रकर घूमने के बाद फ़लक मंज़िल का वह हिस्सा था जहाँ असद मियाँ रहते थे। उनके कमरे की हल्की-हल्की रोशनी मुझे दूर से ही नज़र आ रही थी। दूर, सामने लगभग पचास फीट नीचे, लहरें मारता हुआ तालाब था। कमरे के बाहर लगे यूक्लिप्टस के नीचे खड़े होकर बरसात की ख़ामोश, तेज़ हवा की रातों में मैंने अक्सर पानी की लहरों और यूक्लिप्टस की पत्तियों की थरथराहट को सुना था। इस वक़्त दोनों चीजें चुप थीं।

सीढ़ियाँ चढ़ने से पहले एक लम्हें के लिए मैं रुका। दूर, दाईं तरफ़ दरख़्तों और जंगली घास में घिरी लकड़ी के अध-टूटे शेड्स नज़र आ रहे थे। उस हिस्से में जहाँ की छत गिर चुकी थी या टीन की छत उतारकर बेची जा चुकी थी, किसी ऊपरी कमरे की रोशनी एक आरा-मशीन पर पड़ रही थी जो नामालूम कैसे अपनी जगह लगी रह गई थी। ऐसा लग रहा था कि कोई झुकी कमर की शबीह पनाह ढूँढ़ने के लिए वहां जा छुपी हो या वहाँ से पनाह पाने के लिए सर उठाए खड़ी हो। मेरी आँखों में वर्कशॉप का पुराना नक़्शा घूम गया। असद मियाँ के बाप अपने ज़माने में सूबे के सबसे बड़े लकड़ी के व्यापारी और फ़र्नीचर डीलर थे। एक ही वक्त में कोई डेढ़ सौ कारीगर उनके शेड में काम किया करते थे।

दरवाज़ा खुला हुआ था। असद मियाँ की बेचैन निगाहें मुझ पर ठहर गईं। वह बिस्तर पर उठकर बैठ गए थे। एक पल के लिए वह कुछ सोचते से रहे फिर झपटकर उन्होंने इन्जेक्शन मेरे हाथ से ले लिये।

-लाएगा कौन?- मैंने थोड़ी हिम्मत करके पूछा।

जवाब में असद मियाँ मुस्कुराते हुए बिस्तर से उठे। खड़े होने की कोशिश में पहले तो वह डगमगाए फिर संभलकर नंगे पैर ही अन्दर के कमरे में चले गए। थोड़ी देर बाद वह सीरिंज हाथ में लिये वापस आए और देखते-ही-देखते वह तीनों इन्जेक्शन उन्हीं के हाथों, उनके खून में दाखिल हो गए। पसीने की नन्हीं-नन्हीं बूँदें उनके माथे पर जगमगाने लगी थीं और उनके मुँह से 'सी-सी' की आवाज़ निकल रही थी। थोड़ी देर आँखें बन्द किए, गर्दन अकड़ाए वह बिल्कुल ख़ामोश बैठे रहे, फिर जब उन्होंने आँखें खोलीं तो उनमें दर्द और तकलीफ़ का तआस्सुर ख़त्म हो चुका था।

मुझे एकदम लगा जैसे मैं किसी चीज़ का इन्तजार कर रहा हूँ। किसी ऐसी चीज़ का जो मैं चाहता था कि न हो लेकिन फिर भी जिसका इन्तज़ार था। असद मियाँ के अगले सवाल का। वह सवाल जो मुझे मालूम था। जो मैं चाहता था व न करे, लेकिन जो वह करने वाले थे।

–यार क्या किसी के पास तीन सौ बोर के कारतूस मिल सकते हैं? आबिद मियाँ को चाहिए। सुना है पीस–कोर में कोई आदमी बेच रहा है?

इसके बाद थोड़ी देर के लिए खामोशी रही। असद मियाँ अब बिस्तर पर लेटकर मेरी तरफ़ करवट ले चुके थे। मैंने जैसे पहली बार देखा कि असद मियाँ के सर पर बाल बहुत कम रह गए थे। उनके सर की खाल बालों में से तक़रीबन साफ़ नजर आने लगी थी। और फिर बालों का रंग–न सफ़दे न काला। बिल्कुल राख का–सा रंग हो गया था।

–और तुम्हारी खेती के क्या हाल हैं? मुझे लगा जैसे लहज़े में कुछ छिपा हुआ था, मज़ाक, तन्ज़ या कुछ और, लेकिन क्या मैं समझ नहीं पाया?

–ठीक है, ट्रैक्टर चल रहा है। मैंने ज़रूरतन जवाब दिया।

–मेरा मशवरा मानों तो यह है कि तुम अब भी संजीदगी के साथ पढ़ डालो। क्या रखा है इस तरह खेती–वेती में। आज तो बहन है, कल भानजे बड़े हो जाएँगे तो क्या करोगे? यह बस कुछ तुम्हारे बस का नहीं है। अभी तो सब ख़ुश हैं कि बहनोई की मौत के बाद भाई, बहन और भानजों के लिए कितना कर रहा है, लेकिन धीरे–धीरे सब बदल जाएगा... अरे हाँ! यह तो बताओ–क्या तुमने कभी किसी जिन को देखा है?

–जी? मुझे यक़ीन नहीं आया।

–जिन–मेरा मतलब जिन्नातों से है। लोग नमाज़ें–वज़ीफ़े पढ़कर जिनों को अपने क़ब्ज़े में कर लेते हैं। क्या कहते हैं उन्हें?–मवक्किल! मवक्किल जिसके क़ब्ज़े में हो उसकी हर ख़्वाहिश पूरी करता है। हर काम करता है। किसी भी तरह का। आज एक साहब कह रहे थे कि उन्होंने एक ज़माने में जिनों को देखने और क़ब्जे में करने के लिए बड़े जतन किए। वीरानों में जा–जाकर इबादतें कीं। उजाड़ और गैरआबाद मस्जिदों में अज़ाने दीं, लेकिन उन्हें कभी कोई जिन इन्सानी शक्ल में नज़र नहीं आ सका। हाँ, एक साँप के रूप में ज़रूर नज़र आया। कोई डेढ़ बालिश्त लम्बा, बहुत ही खूबसूरत लाल रंग का। वैसे खुदा मालूम उन्हें यह कैसे पता चला कि वह जिन ही था, कभी तुम्हारा दिल भी चाहता है जिनों को देखने के लिए?

–जी नहीं, मुझे झुरझुरी–सी आ रही थी।

–एक ज़माने में शहर में एक पहुँची हुई औरत थी। सुना है उनके क़ब्ज़े में मवक्किल था। जाहिर है वह उनकी हर ख़्वाहिश पूरी कर सकता था, लेकिन बेचारी मरी बहुत गरीबी में । क्या पता, कभी क़ब्ज़े में आए तो पता चले! और असद मियाँ हँसने लगे– तुम गाँव कब वापस जाओगे–उन्होंने पूछा।

–बासी ईद को या उसके अगले दिन।

–खेतों के लिए खाद का कोई इन्तज़ाम हुआ?

–अभी तक तो नहीं।

–ओह, हाँ...वो फ़र्टीलायज़र्स कारपोरेशन के शर्माजी मेरी पहचान के हैं, एकदम असद मियाँ मेरे चेहरे के बजाय कहीं और देखने लगे थे, जैसे उनकी आँखें मुझसे बचना चाह रही थीं– मैंने यूँ ही बताया। तुम चाहों तो मैं खाद दिलवा...और उन्होंने जुमला पूरा नहीं किया।

अब असद मियाँ छत की तरफ़ देखने लगे थे। फिर एक ठंडी साँस लेकर वह अड़ी थकी आवाज़ में बोले–बस, अब तुम जाओ। मैं बिल्कुल ठीक हूँ।

उनकी आँखें झिलमिला गईं।

सन्नाटे में लहरों की आवाज़ और यूक्लिप्टस की पत्तियों की थरथराहट शुरू हो गई थी।

सब लोग अपने–आपको जैसे उस हादसे के लिए तैयार चुके थे। कमरे में पूरी फ़लक मंज़िल जमा थी।

असद मियाँ के हलक़ से अजीब–सी आवाज़ें निकल रही थीं और उनका मुंह फटकर खुल गया था। गर्दन और माथे की रगें खिंचकर उभर आईं थीं और चेहरे पर नीलाहट दौड़ने लगी थी... बिल्कुल वैसी ही नीलाहट जैसे बर्फ में दबे गोश्त में पैदा हो जाती है। सुहेला भाभी उसी प्याज़ी साड़ी में उनका सर अपनी गोद में रखे बैठी थीं और उनके चेहरे पर एक अजीब–सी वीरानी घिर आई थी। उनकी खूबसूरत साड़ी में असद मियाँ का मैला चेहरा बड़ा बेमेल लग रहा था।

–यासीन शरीफ़ पढ़ो मियाँ! सैयदानी बुआ ने ज़फ़र मियाँ से कहा और ज़फंर मियाँ झपटकर भागे। कुछ ही लम्हें बाद वह पंचसूरा हाथ में लिये कमरे में लौटे। टोपी लगाने से उनके चेहरे पर एक अजीब से सीधेपन या बेवकूफ़ी का तआस्सुर पैदा हो

गया था। चश्में के पिछे उनकी आँखों में बेचैनी थी। असद मियाँ के सिरहाने बैठकर वह धीमी-धीमी आवाज में यासीन शुरू कर चुके थे- मौत की तकलीफ़ को कम करने के लिए। कहीं से किसी की हिचकियों की आवाज़ उभर रही थी। मैंने देखा- मियाँ की माँ अपना सर उनके पैरों में रखे रो रही थीं।

पल भर के लिए मानों सब कुछ रुक गया। असद मियाँ का जिस्म बेहरकत हो गया था-पर सुहेला भाभी की चीख़ से पहले ही असद मियाँ ने आँखें खोल दीं, फिर बड़े मासूमाना अन्दाज में उन्होंने अपने चारों तरफ़ इकट्ठी भीड़ पर नज़र डाली।

ज़फ़र मियाँ यासीन शरीफ़ पढ़ना बन्द कर चुके थे। सुहेला भाभी के चेहरे पर वही तंज़िया-सी मुस्कुराहट फिर खेलने लगी थी। वह एक चमचे से असद मियाँ के हलक़ में पानी टपका रही थीं। मैंने घड़ी की तरफ़ देखा। रात के साढ़े बारह बज चुके थे।

-कुछ बोलो बेटा? -कैसी तबीयत है?-क्या हो गया था? असद मियाँ की माँ कह रही थीं। उनकी आवाज़ ऐसी लग रही थी जैसे किसी ग्रामोफ़ोन रिकॉर्ड को कम स्पीड पर बजा दिया गया हो। आँखों से आँसू बहे जा रहे थे, जिन्हें वह दुपट्टे के पल्ले से पोंछ रही थीं। उनके एक ज़माने के नरम और नाज़ुक हाथों में दूर से ही नज़र आ जाने वाला खुरदरापन आ गया था।

ज़फ़र मियाँ खड़े हुए सर टोपी के ऐंगिल को लगातार बदल रहे थे। पंचसूरा अब भी उनके हाथ में दबा हुआ था। फिर सुहेला भाभी ने असद मियाँ का सर तकियों पर रख दिया। असद मियँ की निगाहें चारों तरफ़ गर्दिश कर रही थीं। सब कुछ गहरी खामोशी में डूब गया था । सिर्फ असद मियाँ की माँ की सिसकियां थीं, जो धीरे-धीरे कम होती जा रही थीं।

असद मियाँ थोड़ी कोशिश के बाद तकियों के सहारे बैठ गए। उनके चेहरे की मुस्कुराहट हर पल गहरी होती जा रही थी। कमरे में कोई अपनी जगह से हिला तक नहीं। अचानक अपने कमजोर जिस्म के बावजूद असद मियाँ ने खनकती-सी आवाज में कहा-नहीं-नहीं, मैं बिल्कुल ठीक हूँ। घबराइए मत, कुछ नहीं होगा। कम-से कम रमजान की कल शाम तक तो नहीं, आप यकीन कीजिए। खुदा मालूम असद मियाँ किससे कह रहे थे, लेकिन उनकी उस मुस्कुराहट में मुझे लगा हजारों कहकहे घिर आए थे।

फिर धीरे-धीरे लोग असद मियाँ के कमरे से रुख़्सत होने लगे। थोड़ी देर बाद मैं अकेला वहां रह गया। सुहेला भाभी शायद अन्दर कपड़े बदल रही थीं और बच्चे सोने

के लिए लेट चुके थे। मैं खामोश बैठा जमीन पर बिछे कालीन को घूरता रहा। उसके डिजाइन, उसके रंग के बारे में सोचता रहा। थोड़ी देर में असद मियाँ को नींद आ गई और वह ख़र्राटे लेने लगे।

उठते वक्त मैं सोच रहा था कि उस रात असद मियाँ के कमरे से शायद हर आदमी मायूस होकर वापिस लौटा था।

अगली शाम साढ़े चार बजे मैं ज़फ़र मियाँ के कमरे में बैठा ईद की खरीदारी का बजट सोच रहा था। शहनाज आपा और जफर मियाँ आखिरी रोजे के इफ्तार पर कहीं इन्वाइटेड थे और तन्नू शाहिदा के यहाँ चला गया था। सबेरे मैं असद मियाँ को देखने गया था और खिड़की में से उन्हें कोई किताब पढ़ता देखकर वापस आ गया था। मैं लिस्ट बना ही रहा था कि जमील भागता हुआ कमरे में दाखिल हुआ।

-आपको अब्बू बुला रहे हैं। उनकी साँस फूल रही थी।

-अम्मी घर में हैं? मैंने पूछा।

-कोई भी नहीं है।

-तबीयत कैसी है उनकी?

-वैसी ही है। सीने में दर्द हो रहा है। आपको जल्दी से बुलाया है। जमील मेरे जवाब का इन्तजार कर रहा था।

-तुम चलो, मैं आ रहा हूँ। पैथिडीन के लिए बुलाया होगा, मैंने सोचा और पाँच रुपए का नोट मैंने अपने जेब में रख लिया।

असद मियाँ की हालत फिर रात जैसी हो रही थी। रंग नीला पड़ गया था, आँखों की पुतलियाँ फिर गई थीं और साँस बहुत तकलीफ से आ रही थी। एक दम पता नहीं क्यों मुझे डर-सा लगा, जैसे किसी सुनसान सड़क पर मैं अकेला खड़ा रह गया हूँ।

थोड़ी देर में लोग इकट्ठे होना शुरू हो गए और मैं भागता हुआ डॉक्टर को बुलाने के ख़्याल से बाहर आ गया। काफ़ी दौड़ने के बाद मुझे एक टैक्सी मिली। जब डॉक्टर के साथ टैक्सी फ़लक मंज़िल में दाख़िल हुई तो बहुत देर हो चुकी थी।

शाम के लम्बे साए ज़मीन पर फैलते जा रहे थे।

कमरे में एक तरफ सिसकियाँ-ही-सिसकियाँ सुनाई दे रही थीं।

असद मियाँ की आँखें खुली हुई, अजीब ढंग से कहीं देख रही थीं। कम रोशनी

में लग रहा था जैसे उन आँखों में मिला-जुला गुस्सा और मुस्कुराहट अब भी थी। सकते के आलम में, मैं उनके चेहरे को देखता रहा, फिर आगे बढ़कर उन खुली आँखों को बन्द कर दिया। डॉक्टर ने उनका जिस्म एक सफ़ेद चादर से ढक दिया।

एकदम किसी चीज़ ने मेरा ख़्याल असद मियाँ के मुर्दा चेहरे से अपनी तरफ़ खींच लिया। जैसे दरोदीवार हिल गए थे। कोई गोला फ़लक मंज़िल के बिल्कुल ऊपर आकर फूटा था।

...दो, तीन, चार...तोपें चल रही थीं, रोज़े के इफ्तार की...ईद के चाँद की। रमज़ान अब खत्म हो रहे थे।

मंजूर एहतेशाम

जन्म : 3 अप्रैल, 1948 भोपाल

प्रमुख कृतियाँ : सूखा बरगद, दास्ताने लापता, बशारत मंजिल (उपन्यास) रमजान में मौत (कहानी संग्रह)

पिता

–धीरेन्द्र अस्थाना

'अपन का क्या है/अपन उड़ जाएँगे अर्चना/धरती को धता बताकर/अपन तो राह लेंगे /पीछे छूट जाएगी/घृणा से भरी और संवेदना से खाली/इस संसार की कहानी'– एयर इण्डिया के सभागार में पिन ड्राप साइलेन्स के बीच राहुल बजाज की कविता की पंक्तियाँ एक ऐन्द्रजालिक सम्मोहन उपस्थित किये दे रही थीं। अब किसी सभागार में राहुल बजाज की कविता का पाठ शहर के लिए एक दुर्लभ घटना जैसा होता था। प्रबुद्ध जन दूर-दूर के उपनगरों से लोकल, ऑटो, बस टैक्सी या अपनी निजी कार से इस क्षण का गवाह बनने के लिए सहर्ष उपस्थित होते थे। राहुल शहर का मान था। साहित्य के जितने भी भारतीय अवार्ड थे, वे सब के सब राहुल के घर में एक गर्वीले ठाठ के साथ शोभायमान थे। दुनिया-भर की प्रसिद्ध किताबों से उसकी स्टडी अँटी पड़ी थी। अखबार, पत्रिकाओं और टीवी चैनल वाले जब-तब उसका इण्टरव्यू लेने के लिए उसके घर की सीढ़ियाँ चढ़ते-उतरते रहते थे। उसके मोबाइल फोन में प्रदेश के सीएम, होम मिनिस्टर, गवर्नर, कल्चरल सेक्रेटरी, पुलिस कमिश्नर, पेज थ्री की सेलिब्रिटिज और बड़े पत्रकारों के पर्सनल नम्बर सेव थे।

वह यूनिवर्सिटियों में पढ़ाया जा रहा था। असम, दार्जिलिंग, शिमला, नैनीताल, देहरादून, इलाहाबाद, लखनऊ ,भोपाल, चण्डीगढ़, जोधपुर, जयपुर, पटना और नागपुर में बुलवाया जा रहा था। मुम्बई जैसी मायावी नगर में वह टू बेडरूम हॉल के एक सुविधा और सुरुचिसम्पन्न फ्लैट में जीवन बसर कर रहा था। वह मारुति जेन में चलता था। रेमण्ड तथा ब्लैक बेरी की पैण्टें, पार्क एवेन्यू और वेनह्यूजन की शर्टें और रेड टेप